info.qxd 1/12/05 5:55 PM Page 2

चाहा क्या, क्या मिला

सरकार में पारदर्शिता और जवाबदेही के इरादे से पेश किया जाना वाला सूचना अधिकार विधेयक 2004 उम्मीदों और आवश्यकताओं को पूरा करने में अक्षम, उसे और असरदार बनाना जरूरी

हल्के हुए अधिकार

नया विधेयक राजग सरकार के सूचना स्वतंत्रता अधिनियम, 2002 से भी बदतर है जिसके बदले यह लाया जा रहा है. हालांकि साझा न्यूनतम कार्यक्रम इसे ''प्रगतिशील, सहभागी और सार्थक'' बनाने का वादा करता है.

सीमित दायरा: सूचना स्वतंत्रता कानून तो केंद्र के साथ राज्य सरकारों पर भी लागू होने के लिए था लेकिन नया विधेयक खास केंद्रीय विभागों तक ही सीमित है.

नतीजा: सूचना स्वतंत्रता कानून के तहत राज्य और जिला प्रशासन से जो सूचना मिल सकती थी, उससे अब इनकार कर दिया गया है.

दंड का कमजोर प्रावधान: कुछ राज्यों के कानून में सूचना से इनकार या देरी पर दंड का विधान है, जबकि नए केंद्रीय विधेयक में यह प्रावधान है कि सूचना आयुक्त किसी अधिकारी द्वारा सूचना मुहैया कराने पर ''लगातार नाकामी'' के बाद ही शिकायत किसी मजिस्ट्रेट को सुपुर्द कर सकता है.

नतीजा: दंड के प्रावधान के बिना कानून का डर नहीं होगा. इससे मामले के निबटारे में देरी होगी और अदालतों के ऊपर बोझ बढ़ेगा.

■ **शंकर अय्यर** और **मुरली कृष्णन**

नरक की राह भी नेक इरादों से ही बनती है. सभी लोग नेक ही चाहते हैं.

—जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

पहले भूमिका पर गौर कीजिए. संसद में पेश 'सूचना का अधिकार विधेयक 2004' के मकसद के बारे में इस भूमिका में लिखा है, ''सार्वजनिक अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र की सूचनाओं तक लोगों की पहुंच सुरक्षित करने के उद्देश्य से सूचना के अधिकार की व्यावहारिक व्यवस्था बनाने, हर सार्वजनिक पद की कार्यशैली में जवाबदेही और पारदर्शिता को प्रश्रय देने, केंद्रीय सूचना आयोग के गठन और इससे संबंधित या संयोगवश जुड़े मामलों के लिए...'' इस भूमिका को शब्दशः स्वीकार कर लिया जाए तो यूपीए सरकार इरादे के मामले में सर्वाधिक अंक पाने की हकदार होगी. दुर्भाग्य से इरादे ही काफी नहीं होते. बेशक, देश में प्रशासन सुधारने के लिए नेक इरादे ही काफी होते तो आज देश में दूध और शहद की नदियां बह रही होतीं. सचाई तो यह है कि सूचना का अधिकार विधेयक न सिर्फ उम्मीदों के अनुरूप नहीं है, बल्कि यह असल में 2002 के सूचना स्वतंत्रता अधिनियम से भी हल्का है जिसके बदले यह लाया जा रहा है.

यह विधेयक सूचना के नागरिक अधिकार को केंद्र सरकार और केंद्र शासित क्षेत्रों तक सीमित करता है. इसमें संबंधित अधिकारी द्वारा सूचना मुहैया कराने से मना करने पर दंड का कोई विधान नहीं है, इसके लिए अदालत का दरवाजा खटखटाना ही एकमात्र रास्ता है. यही नहीं, इसमें नागरिकता प्रमाण पत्र की एक नई शर्त जोड़ दी गई है. हैरानी की बात यह है कि दूसरे मुद्दों के विपरीत इस मामले में राजनैतिक इच्छा का अभाव भी नहीं ही है. आखिर यूपीए सरकार की गीता माना जाने वाला साझा न्यूनतम कार्यक्रम (सीएमपी) आश्वस्त करता है कि ''सूचना का अधिकार अधिनियम को ज्यादा प्रगतिशील, सहभागी और सार्थक बनाया जाएगा.''

कांग्रेस अध्यक्ष, जो राष्ट्रीय सलाहकार परिषद (एनएसी) की भी अध्यक्ष हैं, सोनिया गांधी ने प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को 16 अगस्त 2004 को लिखे अपने पत्र में इस मसले पर गंभीरता दिखाने का आग्रह किया था. उन्होंने इस कानून को सशक्त बनाने के लिए चार अहम सूत्रों की चर्चा की थी—अधिकाधिक खुलापन, संवैधानिक तकाजों से जुड़े न्यूनतम अपवाद, अपील की स्वतंत्र व्यवस्था, सूचना मुहैया कराने में कोताही पर दंड का प्रावधान, और सूचना प्रवाह के लिए कारगर व्यवस्था. इसके अलावा, एनएसी ने सूचना स्वतंत्रता अधिनियम (एफओआइए) 2002 में 36 संशोधनों की सिफारिश की थी. छोटे-मोटे संशोधनों को छोड़ दें तो सूचना अधिकार विधेयक सोनिया के गिनाए चार मौलिक सूत्रों पर भी खरा नहीं उतरता.

सूचना के अधिकार को लेकर सक्रिय कार्यकर्ताओं की चिंताओं को समझने के लिए इरादे और काम के फर्क को जानना जरूरी है. एक संशोधन के मुताबिक, अगर किसी राज्य में सूचना के अधिकार के साथ कोई और कानून है, वहां किसी व्यक्ति को राज्य के कानून के साथ-साथ केंद्रीय कानून के तहत भी सूचना हासिल करने का अधिकार होगा. लेकिन विधेयक सिर्फ केंद्र सरकार के बारे में सूचना का अधिकार देता है जिसमें 19 केंद्रीय संगठनों को (सूचना स्वतंत्रता अधिनियम की तरह ही) अपवाद बनाता है और राज्य सरकारों की सूचना तक पहुंच की इजाजत नहीं देता है.

इसका वाजिब तर्क अभी स्पष्ट नहीं किया गया है. शायद यूपीए के कुछ सहयोगी क्षत्रपों ने असुविधाजनक कानून का विरोध किया है. आखिर, ऐसे विधेयक का भला बिहार या पश्चिम बंगाल के शासक क्यों स्वागत करेंगे. सूचना का अधिकार चूंकि मौलिक नहीं बल्कि अवशिष्टिय अधिकार है, इसलिए यूपीए सरकार इसके तहत राज्यों को न लाने की सावधानी बरत सकती थी. हालांकि राजग सरकार इन पचड़ों में पड़े बगैर सूचना स्वतंत्रता अधिनियम 2002 बना चुकी थी. बहरहाल, वजह चाहे जो हो, राज्य सरकारों और स्थानीय निकायों को इसकी परिधि से बाहर करना पश्चगामी कदम है. केरल और ओडीसा जैसे राज्यों ने केंद्रीय कानून की संभावना से अपने विधेयकों को रोक रखा था. ये राज्य भी अपने कानून बना सकते हैं लेकिन बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश और हरियाणा जैसे राज्यों का क्या होगा? क्या यूपीए सरकार वाकई यह यकीन करती है कि इसके स्वाभाविक असर से राज्यों में स्वतंत्र कानून बनेंगे, जो उलझन ही बढ़ाएंगे?

हर सेमिनार-सम्मेलन में तमाम मंत्री और अफसरशाह यह कहना नहीं भूलते कि असली सुधार तो राज्य सरकारों की ओर से आएगा, जो नीतियों और कार्यक्रमों पर वाकई अमल करती हैं. दरअसल, गरीबी दूर करने की 36,000 करोड़ रु. की 200 केंद्रीय योजनाओं पर व्यावहारिक अमल तो राज्य सरकारें ही करती हैं. पारदर्शिता और जवाबदेही सिर्फ अच्छे प्रशासन के लिए ही अहम

सुमीत इंदर सिंह

परवीन अमानुल्लाह | दिल्ली

''मामले को अंजाम तक ले जाऊंगी''

आइएएस अधिकारी की पत्नी 44 वर्षीया परवीन ने डिफेंस कॉलोनी में 44 निर्माण कार्यों के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए जुलाई 2004 में दिल्ली नगर निगम (दिननि) को आवेदन दिया था. उन्होंने पाया कि 26 सड़कों का काम अभी तक शुरू नहीं हुआ है. इससे भी बदतर यह कि कार्य प्रगति पर दिखाने के लिए सड़कें ''कम कर दी'' गई थीं. लिहाजा, उन्होंने 50 लाख रु. के काम के ठेके और बिलों की प्रति मांगी. जूनियर इंजीनियर अड़ गया; वरिष्ठ अधिकारियों ने कहा कि उन्हें 1.2 लाख रु. शुल्क देना होगा. फिर वे जन शिकायत आयोग चली गईं. 6 दिसंबर को सुनवाई के बाद उन्हें बताया गया कि प्रतियां दो हफ्ते के भीतर मिल जाएंगी. शुल्क? मात्र 6,000 रु. परवीन कहती हैं, ''इस मामले को अंजाम तक ले जाऊंगी.''

फौजान हुसैन

एस.सी.एन. जटर | पुणे

''अधिकारी परेशान करते हैं पर हार नहीं माननी है''

बहत्तर वर्षीय सेवानिवृत्त मेजर जनरल, नागरिक चेतना मंच के अध्यक्ष एस.सी.एन. जटर ने पुणे नगर निगम की कारों के बारे में सूचना मांग कर निगम की अवैध गतिविधियों को उजागर किया. निगम की कारों को शहर की सीमा से बाहर नहीं ले जाया जा सकता लेकिन जटर ने पाया कि 10 महीने के भीतर निगम के अधिकारियों ने करदाताओं का 51 लाख रु. खर्च करके बाहर का दौरा किया. उन्होंने उस अवधि के रिकॉर्ड की मांग की थी. वे कहते हैं, ''जब कोई जानकारी मांगता है और अपील करता है तो अधिकारी परेशान करते हैं क्योंकि उन्हें काफी कुछ छिपाना होता है. लेकिन आप हार नहीं मान सकते.''

info.qxd 1/12/05 5:56 PM Page 4

सुमीत इंदर सिंह

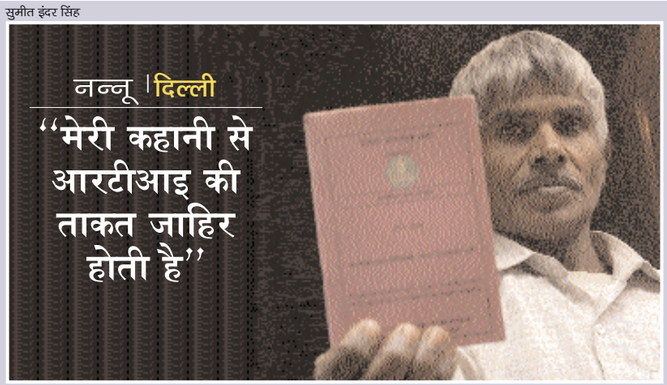

नन्नू पूर्वी दिल्ली की झुग्गी बस्ती वेलकम मजदूर कॉलोनी के दिहाड़ी मजदूर हैं. उनका राशन कार्ड खो गया और उन्होंने जनवरी 2004 में डुप्लीकेट राशन कार्ड के लिए आवेदन दिया. तीन महीने तक खाद्यान्न और नागरिक आपूर्ति कार्यालय के चक्कर काटते रहे लेकिन क्लर्क ने उनका काम करने या उनके आवेदन की स्थिति के बारे में बताना तो दूर, उनकी तरफ देखा भी नहीं. अंततः उन्होंने सूचना के अधिकार कानून के तहत एक आवेदन देकर अपने आवेदन पर रोजमर्रा की कार्रवाई, उसे देखने वाले अधिकारियों के नाम और उनके खिलाफ कार्रवाई के बारे में जानना चाहा. एक सप्ताह के भीतर खाद्यान्न विभाग के एक निरीक्षक ने उनसे मिलकर कहा कि उनका कार्ड बन गया है. जब अगले दिन नन्नू अपना कार्ड लेने गए तो खाद्यान्न और नागरिक आपूर्ति अधिकारी ने उन्हें चाय पिलाई—और उनसे आग्रह किया कि वे अपना आवदेन वापस ले लें क्योंकि उनका काम हो गया है.

साभारः एमकेएसएस

कक्कू के लोग | राजस्थान

''अब हमें मालूम होगा कि हमारा हक क्या है''

बीकानेर में कक्कू के लोगों ने काफी जद्दोजेहद के बाद पिछले पांच साल में अपनी पंचायत में विकास कार्यों के खर्चों का रिकॉर्ड हासिल कर लिया. नौकरशाही के अड़ियल रुख के बावजूद जागरूक नागरिक मंच की मदद से पुलिस संरक्षण में जुलाई 2004 में एक सार्वजनिक सुनवाई हुई—लेकिन इससे पहले सरपंच और उसके परिजनों ने स्वयंसेवकों पर हमला कर दिया. दरअसल, ठेकेदारों को माल काटने में मदद करने के लिए रिकॉर्ड में हेराफेरी की गई थीः काल्पनिक नामों वाले फर्जी मस्टर रोल थे और रिकॉर्ड के उलट कम दिहाड़ी दी गई थी. एक ग्रामीण जुगल प्रसाद कहते हैं, ''सुनवाई ने बेशक लोगों का उत्साह बढ़ा दिया है और भविष्य में हमें मालूम होगा कि हमारा हक क्या है.''

नहीं है, बल्कि गरीबी दूर करने का लक्ष्य पाने में भी इसकी अहमियत है. लेकिन संसद में पेश किए गए इस विधेयक ने एक ही झटके में पिछले कानून के तहत हासिल राज्य सरकारों और स्थानीय निकायों के सूचना के अधिकार को हटा दिया. हालांकि राज्य सरकारों और स्थानीय निकायों के सूचना के अधिकार ही आम आदमी के ज्यादा काम के होते हैं इसलिए उन्हीं की मांग ज्यादा है. विधेयक उस सूचना के अधिकार से इनकार करता है जो अधिकारियों को जवाबदेह बनाने के लिए जरूरी है.

जिन सात राज्यों में सूचना का अधिकार मिला हुआ है, उन पर एक सरसरी निगाह डालने से ही पता चल जाता है कि सभी वर्ग और आय वर्ग के लोगों की मुख्य चिंता स्थानीय स्तर पर विकास—यानी सड़क, सफाई, जलापूर्ति—को लेकर होती है. इस तरह विधेयक के दायरे से राज्य सरकारों और स्थानीय निकायों को मुक्त करके सूचना के अधिकार के मकसद को ही खत्म कर दिया गया.

दूसरे, एनएसी ने तो अपील की स्वतंत्र व्यवस्था की सिफारिश की थी मगर विधेयक में सिर्फ यह कहा गया है कि सूचना आयुक्त किसी शिकायत को किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष तभी पेश करेंगे जब संबंधित अधिकारी ''सूचना मुहैया कराने में बार-बार नाकाम रहा हो.'' मजदूर किसान संगठन संघ (एमकेएसएस) के निखिल दे कहते हैं, ''कानून सूचना आयुक्त को ऐसी प्रक्रिया शुरू करने को बाध्य नहीं करता. यह संबंधित केंद्रीय अधिकारी के लिए शिकायत करना जरूरी भी नहीं बनाता. यही नहीं, यह भी स्पष्ट नहीं है कि क्या शिकायत सरकार की अनुमति से दायर की जा सकती है. इसलिए इसकी संभावना कम है कि सूचना आयुक्त ऐसी प्रक्रिया शुरू करेगा या संबंधित सरकारी अधिकारी पर कुछ अंकुश लगेगा.''

विधेयक के हल्केपन को जानने के लिए इसकी तुलना महाराष्ट्र के प्रगतिशील अधिनियम से की जा सकती है. राज्य में सूचना के अधिकार का आंदोलन बढ़ता जा रहा है. इसकी मुख्य वजह यह है कि महाराष्ट्र सूचना अधिकार (एमआरटीआइ) कानून लोगों को शिकायत करने का अधिकार देता है और उसमें दोषी अधिकारी को दंडित करने का प्रावधान है. कम-से-कम 30 मामलों में देरी की वजह से जुर्माना देना पड़ा है. एमआरटीआइ अपीली अधिकारी को जुर्माना लगाने का भी अधिकार देता है. इसके बावजूद लोगों को सूचना हासिल करने के लिए जूझना पड़ता है.

जिन राज्यों में सूचना अधिकार कानून कमजोर है या उसमें दंड का विधान नहीं है तो दोषी अधिकारी अपीली अधिकारियों की चिंता ही नहीं करते. सूचना के अधिकार पर जागरूकता फैलाने के लिए परिवर्तन नामक

साभारः एमकेएसएस

जागरूकता: भीलवाड़ा में जन नीति अभियान यात्रा

अधिकार कहां तक ?

सूचना का अधिकार 30 राज्यों में से केवल सात में ही है. इसने अभी आंदोलन का रूप ले लिया है. पर्याप्त दंड की व्यवस्था और प्रचार से यह सचमुच अधिकार दिलाने वाला माध्यम बन जाएगा.

दिल्ली	महाराष्ट्र	कर्नाटक	तमिलनाडु	राजस्थान	गोवा	मध्य प्रदेश
कानून बना: 2001	कानून बना: 2002	कानून बना: 2000	कानून बना: 1997	कानून बना: 2000	कानून बना: 1997	कानून बना: 2003
3,000 से अधिक लोगों ने सूचना मांगी. प्रति दिन 50 रु. का दंड है लेकिन किसी अधिकारी को दंड नहीं दिया गया है.	2000 से ज्यादा लोगों ने कानून का इस्तेमाल किया. प्रति दिन 250 रु. दंड है और 25 अधिकारियों को दंड दिया गया है.	अपीली पंचाट के सामने 400 से ज्यादा लोगों ने आवदेन किए हैं. आवेदन शुल्क नहीं है लेकिन जीरॉक्स कॉपी 5 रु. की है.	राज्य के जेल और पुलिस विभाग के पास करीब 60 याचिकाएं लंबित हैं. अभी तक दंड नहीं लगाया गया है.	कानून का इस्तेमाल जमीनी स्तरों पर पारदर्शिता और शिकायत दूर करने के लिए हो रहा है. आवेदन शुल्क मात्र 5 रु.	पुराने और प्रगतिशील कानूनों में से एक. प्रति दिन 1,000 रु. का दंड और 1,500 लोगों ने इसका इस्तेमाल किया.	अधिसूचना जारी होनी है. आवेदनों या दंड का कोई रिकॉर्ड नहीं है लेकिन अपीली प्राधिकरण 200 रु. ले सकता है.

एनजीओ चलाने वाले अरविंद केजरीवाल कहते हैं कि दिल्ली के कानून में दंड के प्रावधान में भी सुधार की जरूरत है. वे कहते हैं, ''पलड़ा अफसरशाहों की ओर झुका हुआ है और दोषी अधिकारियों को शायद ही दंड मिलता है.'' सो, राज्यों से इन खबरों और एनएसी की सिफारिश के बावूजद विधेयक दंड के मामले में मौन है. सूचना के अधिकार के लिए सक्रिय कार्यकर्ताओं के मुताबिक कोई अधिकारी सूचना देने में देरी करता है, इनकार करता है या सूचना को नष्ट करता है तब भी दंड का कोई विधान नहीं है. इसके अलावा, एनएसी तो सूचना मुहैया कराने की कारगर व्यवस्था की बात करता है मगर विधेयक में नागरिकता प्रमाण पत्र की अनिवार्यता लागू करके उसे और पेचीदा बना दिया गया है. सो, आश्चर्य नहीं कि एनएसी के चार सदस्यों—एन.सी. सक्सेना, अरुणा राय, ज्यां द्रेज और ए.के. शिवकुमार—ने सोनिया को चिट्ठी लिखकर अपनी चिंता दर्ज की और विधेयक को ''बेमानी'' बताया. राय बताती हैं कि विधेयक ''सूचना स्वतंत्रता अधिनियम से भी काफी बुरा है और यूपीए सरकार के सीएमपी में दिए गए आश्वसनों का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन है.''

विधेयक संसद के शीतकालीन सत्र के कार्य विवरण में दर्ज नहीं था और आखिरी मौके पर इसे रखा गया. इसी से जाहिर हो जाता है कि सरकार

info.qxd 1/12/05 5:56 PM Page 6

फैजान सिंह

शैलेश गांधी | महाराष्ट्र

''हम इस देश के हैं और हमें जानने का अधिकार है''

आइआइटी स्नातक, उद्योगपति गांधी ने यह पता लगाने के लिए आरटीआइ कानून का इस्तेमाल किया कि नेताओं के इशारे पर कितने पुलिस अधिकारियों का तबादला किया गया. सितंबर 2003 में उन्होंने जन संपर्क अधिकारी (पीआइओ) से गुजारिश की, पर जवाब नहीं मिला. सो, उन्होंने आठ आवेदन और इतनी ही अपीलें कीं. साफ इनकार मिलने के एक साल बाद 140 पुलिसवालों के खिलाफ कार्रवाई की गई और दो को चेतावनी दी गई. गांधी के पास तब तक उन पुलिसवालों की सूची नहीं थी जिनकी सिफारिश नेताओं ने की थी, लेकिन कोई नेता लिखित सिफारिश नहीं करता. यह छोटी कामयाबी है. वे कहते हैं, ''हम इस देश के हैं और हमें जानने का अधिकार है.''

सुमीत इंदर सिंह

लिओ सल्धाना | कर्नाटक

''समीक्षा का आदेश सूचना अधिकार की जीत है''

कर्नाटक के मुख्यमंत्री धर्म सिंह ने विवादास्पद बंगलूर-मैसूर इन्फ्रास्ट्रक्चर कॉरिडोर प्रोजेक्ट (बीएमआइसीपी) की समीक्षा के आदेश दो महीने पहले ही दिए. यह लिओ के लिए बड़ी कामयाबी है. नीति विश्लेषक लिओ और उनका एन्वायर्नमेंट सपोर्ट ग्रुप पिछले नौ साल से 2,000 करोड़ रु. की इस परियोजना की अनियमितताएं उजागर करने में जुटा था. इसके तहत बंगलूर और मैसूर के बीच चार लेन का टॉल एक्सप्रेसवे और पांच शहर बसाने की योजना है. लिओ जानना चाहते थे कि लोगों की 20,000 एकड़ जमीन कैसे अधिग्रहीत की जा रही है और परियोजना को अमली जामा पहना रही कंपनी क्या प्रक्रिया अपना रही है. यह सूचना उन्हें नहीं मिल रही थी. लेकिन लिओ ने हार नहीं मानी. वे कहते हैं, ''धर्म सिंह का समीक्षा के लिए आदेश देना आरटीआइ की जीत है.''

के भीतर भी इसको लेकर विरोध है. मनमोहन सिंह ने गद्दी संभालने के बाद शुरुआती चिट्ठी अफसरों को लिखी कि सुशासन मुहैया करने की कोशिश करें. उन्होंने कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में दो समितियां भी बनाईं. इनका मकसद सुरेंद्रनाथ समिति और पी.सी. होता समिति की सिफारिशों का अध्ययन करना और केंद्र तथा राज्य सरकारों में ईमानदारी, काबिलियत और पारदर्शिता में सुधार लाने के लिए व्यवस्थागत बदलावों का सुझाव देना है.

पिछले महीने, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग ने एक चुस्त-दुरुस्त प्रस्तुति तैयार करने का पहला अभ्यास पूरा कर लिया है. दो दर्जन स्लाइडों के साथ इस विस्तृत लेख में कार्य-दायित्व, कार्य-मूल्यांकन और लक्ष्य पूर्ति की समीक्षा के जरिए सरकारी कामकाज के विश्लेषण की नई व्यवस्था का सुझाव दिया गया है.

विडंबना देखिए कि हर राजनैतिक पार्टी कम-से-कम कागज पर और संसद में—सूचना के अधिकार की पक्षधर है. लेकिन अफसरशाही के विरोध और कानूनी पेचीदगियों के कारण नेक इरादे भी पटरी नहीं पकड़ पाए. कारगर कानून की जरूरत 24 मई 1997 को मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में ही भांप ली गई थी. उसके बाद गृह मामले की स्थायी संसदीय समिति ने सिफारिश की कि सरकार सुशासन को प्रश्रय देने की खातिर कानून बनाने के लिए जरूरी कदम उठाए. इसके बाद सरकार ने एच.डी. शौरी के नेतृत्व में सूचना के अधिकार और सरकार में खुलापन तथा पारदर्शिता लाने के लिए एक कार्यदल का गठन किया. इस दल ने एक विधेयक का मसौदा पेश किया, जिसका मंत्रियों के समूह ने अध्ययन किया. फिर, सूचना स्वतंत्रता विधेयक बना जिसे राजग सरकार ने 2002 में पेश किया मगर यह मई 2004 में राजग सरकार गिरने के पहले अधिसूचित नहीं हो पाया.

पांच दशकों से भारतीय लोकतंत्र किसी सहृदय राजशाही की तरह ही चलता आया है, जहां जनता पांच साल के लिए सरकार को गद्दी सौंपकर उससे रामराज्य की उम्मीद करती रही है. अगर कुछ लोगों ने इसमें हस्तक्षेप करना चाहा भी तो इसकी गुंजाइश नहीं थी. सूचना का अधिकार लोकतंत्र में जनता को मौन दर्शक से सक्रिय सहभागी की भूमिका दिलाता है. पिछले 30 साल से हर चुनाव में 250-315 सांसद अपनी सीट गंवाते रहे हैं. इसे वे विरोधी रुझान मानते रहे हैं. सचाई यह है कि उनकी पराजय का कारण सुशासन का अभाव रहा है. सूचना के अधिकार विधेयक को चुस्त-दुरुस्त बनाकर राजनैतिक नेता न सिर्फ इस विरोध को अफसरशाही की ओर मोड़ सकेंगे बल्कि मतदाताओं को अधिकार संपन्न भी बना सकेंगे.

—साथ में **अंजलि दोषी** और **स्टीफन डेविड**